अङ्क-२५
जनवरी-जून २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

मानव और प्रकृति पर वैदिक चिन्तन-आधुनिक सन्दर्भ

डॉ. पूनम घई

वेद अर्थात् ज्ञान। वेद सृष्टि के ज्ञान-विज्ञान के आगार हैं। वेद संसार की प्राचीनतम ज्ञानराशि हैं। संसार के मानव-इतिहास में किसी देश और किसी काल में भी ऐसी कोई चिन्तनधारा नहीं रही, जिसमें सृष्टि सम्बन्धी चिन्तन मानव-जाति को मूल मानकर न किया गया हो। सम्पूर्ण वैदिकदर्शन के केन्द्रीभूत विषय हैं- परमात्मा, आत्मा, प्रकृति, ऋत एवं सत्य । यह सहज प्रतीत होता है कि क्षण-क्षण परिवर्तनशील जगत् के मूल में कोई ध्रुव तत्व अवश्य है।

इस चराचर-सृष्टि में मानव ही 'कर्मयोनि' को ग्रहण करता है और चिन्तन-शक्ति से युक्त होता है- "मत्वा कर्माणि सीव्यति" (निरुक्त)। अतः वेद प्रतिपादित समस्त विज्ञान, कर्मकाण्ड और उपासना-मार्ग मनुष्य के लिए ही है।

भारत के मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व मानव-जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व और उसकी रक्षा, प्रकृति से सान्निध्य, संवेदनशीलता, रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्व निकाले थे। वेदकालीन समाज में न केवल प्रकृति के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी वरन् उसकी रक्षा और महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया है। प्रकृति की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अङ्ग था, जैसा कि कहा भी गया है -

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।[१]

अर्थात् भूमि जिसकी पादस्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।

यहाँ परब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार कर प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश किया गया है। वेदों के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष का सम्बन्ध एक-दूसरे पर आधारित है -

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।[२]

---

[१] अथर्ववेद – १०.७.३२
[२] अथर्ववेद – १२.१.१२

ऋग्वेद में वर्षा ऋतु को उत्सव मानकर शस्यश्यामला प्रकृति के साथ अपनी हार्दिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति की गयी है -

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव।।[३]

अर्थात् जिस दिन पहली वर्षा होती है, उस दिन मेढक सरोवरों के पूर्ण-रूप से भर जाने की कामना से चारों ओर बोलते हैं, इधर-उधर स्थिर होते हैं, उसी प्रकार हे ब्राह्मणों ! तुम भी रात्रि के अनन्तर ब्राह्म-मुहूर्त में जिस समय सौम्य-वृद्धि होती है, उस समय वेदध्वनि से परमेश्वर के यज्ञ का वर्णन करते हुए वर्षा-ऋतु के आगमन को उत्सव की तरह मनाओ। वृष्टि-विज्ञान वेद का प्रमुख विज्ञान है। इसके द्वारा **निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतुः**[४] । जब-जब हम चाहें, तब वर्षा हो; जब न चाहें तब वर्षा न हो- इस प्रकार का वर्षा पर नियन्त्रण करके पृथ्वी को धन-धान्य से पूर्ण, सुखी कर सकते हैं और अतिवृष्टि से होने वाली बाढ़ आदि की धन एवं जनहानि से बचा सकते हैं और असमय की वृष्टि के निवारण द्वारा कृषि को हानि कार्य से भी मुक्त कर सकते हैं। वैदिक वृष्टि-विज्ञान इस कार्य में बहु परीक्षित, प्राचीनकाल से अब तक व्यवहार-सिद्ध है। मेघों के न होने पर भी यज्ञ द्वारा मेघों का निर्माण भी होता है और मेघ होने पर उनको बरसाया भी जा सकता है। वर्तमान विज्ञान अभी इस विषय में बहुत पीछे है। वह मेघों के होने पर उन्हें बरसाने की क्रियामात्र कर सकता है।

प्रकृति के अनुकूल-प्रतिकूल ये दोनों रूप मानव तथा उससे सम्बद्ध परिपूर्ण परिवेश को सदैव प्रभावित करते रहे हैं। यही नहीं मनुष्य ने भी जीवन निर्वाह की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अपनी विकास-यात्रा के सन्दर्भ में प्रकृति को प्रभावित किया है।

ईसा की बीसवीं शताब्दी के अन्तिम लगभग तीन-चार दशकों से पर्यावरण-असन्तुलन की विकराल भयावहता को देखकर विश्व-स्तर पर चिन्ता व्याप्त रही है। जनसङ्ख्या-विस्फोट तथा औद्योगिक प्रगति ने प्राकृतिक-संसाधनों के सर्वथा दोहन एवं शोषण द्वारा तीव्र गति से सम्पूर्ण परिवेश को इस सीमा तक प्रदूषित कर डाला है कि मानव-जाति का ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी जगत् तथा वनस्पति संसार का अस्तित्व ही समाप्तप्राय होता जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्रसङ्घ तथा उससे सम्बद्ध अनेकों संस्थाएँ इस जटिल समस्या का अध्ययन और समाधान करने में सन्नद्ध हैं। राष्ट्रीय स्तर पर भी चिपको-आन्दोलन, भीनासार-आन्दोलन, नर्मदा बचाओ-आन्दोलन तथा अन्यान्य गैर सरकारी संगठन संस्थाएँ इस दिशा में सचेष्ट तथा सक्रिय हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम पुनः उन

---

[३] ऋग्वेद- ७.१०३७
[४] यजुर्वेद – २२/२२

वैदिक प्राचीन एवं सर्वथा वैज्ञानिक पद्धतियों की ओर देखें तथा अपनी प्राकृतिक-सम्पदा को बचाने का प्रयास करें।

समस्त प्रकृति एवं मानव-जीवन के परस्पर सामञ्जस्य का प्राचीन भारत के ऋषियों-मुनियों द्वारा विरचित वेदों, पुराणों, उपनिषदों तथा अनेक धार्मिक-ग्रन्थों में चित्रण किया गया है। वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक शुद्धता को जीवों के लिए अनिवार्य माना है। उन्होंने प्रकृति के छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े महिमा विवर्तों के सम्मुख स्वयं को सर्वात्मना उपासक के रूप में समर्पित किया।

जल (आपः), वायु(वातः) एवं औषधि (पेड़, पौधे) इन तीनों ने इस विश्व को (त्रीणि छन्दांसि) आवृत्त कर रखा है। 'छन्दांसि' शब्द का अर्थ है -परिधि। प्रकृति के प्रत्येक कण में अन्तर्धि (आन्तरिक शक्ति) और परिधि (बाह्य शक्ति) होती है। अन्तर्धि इसे गति और ऊर्जा देती है और परिधि इसकी रक्षा करती है -

अन्तर्धिर्देवानां परिधिर्मनुष्याणाम्।[५]

इस परिधि (बाह्य-शक्ति) का उद्देश्य जीवन की रक्षा से है। वन्य-जीव वनों को बनाये रखते है; वन जलों को आकर्षित कर पृथ्वी पर बरसाते हैं एवं वायु को शुद्ध करते हैं। इस प्रकार इस परिधि के बने रहने से (पारिस्थितिकी सन्तुलन व वातावरण की शुद्धता बने रहने से) जीव जीवित रहते हैं -

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम्।।[६]

इस परिधि में पृथ्वी अन्तरिक्ष, द्यौः जल, अग्नि आदि देव, दिशायें, पर्वत, मेघ, वन, वृक्ष, औषधि वनस्पति, पशु आदि पदार्थ में परमात्मा का प्रमुख स्थान है, जिससे सभी जीवों की सुरक्षा होती है। अर्थववेद में जल, वायु और औषधियों को छन्दस् आच्छादक बताया गया है।

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्व चक्षणम्
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन्भुवन आर्पितानि।।[७]

प्रस्तुत मन्त्र में जल, वायु और औषधियों को छान्दस्-पर्यावरण निर्दिष्ट किया है। ये तीनों ही तत्त्व जीवन में अस्तित्व को सुरक्षित रखते हैं। अन्य जगहों पर भी जल, वायु तथा औषधियों को परधि, परिभू शब्दों को आच्छादक वर्णित किया गया है। पृथ्वी भी ब्रह्माण्ड में परिधि-रूप में, जो सभी जीव जन्तुओं और पदार्थों की आच्छादक है; जैसा कि अर्थववेद में स्पष्ट है -

उर्वीरासन् परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत।

---

[५] अथर्ववेद – १२.२.४४
[६] अथर्ववेद – ८.२.२५
[७] अथर्ववेद – १८.१.१७

तत्रैतावग्नी तावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः।[८]

मानव के लिए कृषि अत्यन्त आवश्यक है। भूमि की अनादिसिद्धि उर्वराशक्ति का संरक्षण कृषिकार्य ही सम्पादित कर सकता है। भारतवर्ष कृषि प्रधान राष्ट्र है, क्योंकि यहाँ की प्राकृतिक स्थिति इसके लिए सर्वथा उपयुक्त है। वैदिक-कृषिसूक्त अथर्ववेद तृतीयकाण्ड के सत्तरहवें क्रम में वर्णित है, जिसमें विश्वामित्र ऋषि ने कृषि को प्राणीजगत्- मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी के लिए सौभाग्यवर्द्धक तथा सर्वदा कल्याणकारक कर्म बताया है। प्राणरक्षक अन्न की उत्पत्ति कृषि से ही होती है। कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयारण्यक के नवम प्रपाठक, भृगुवल्ली (वारुणी-उपनिषद्) में अन्न सञ्चय-रूप व्रत में निर्देश दिया गया है - **अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्।**[९]

अर्थात् अधिक अन्न उत्पन्न करना चाहिए। यह व्रत है। पृथिवी है, अन्न है। अन्नोत्पादन के लिए कृषि कर्म ही एकमात्र सदुपाय है। अतएव कहा है -

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमानाः।।[१०]

जब भूमि घी और शहद से योग्य रीति से सिञ्चित होती है और जलवायु आदि देवों की अनुकूलता उसको मिलती है, तब वह हमें उत्तम, मधुर, रसयुक्त धान्य और फल देती रहे।

कृषि कार्य में गोवंश (पशुवर्ग) का अनिवार्य सहयोग अपेक्षित होता है, अतः वेद में 'गो-सूक्त' तथा 'गोष्ठसूक्त' के माध्यम से यह बताया गया है कि गायें हमारी भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का प्रधान साधन हैं। आस्तिक मनुष्य को धन, बल, अन्न और यश गौ तथा गोवंश से ही प्राप्त है। घर की शोभा, पारिवारिक आरोग्यता तथा पराक्रम के लिए प्राणपण से इन मूक प्राणियों का सर्वथा संरक्षण करे, जिससे सामाजिक-आर्थिक उन्नति के साथ पर्यावरण संरक्षित रह सके। गोमाता की महिमा बतलाते हुए तैत्तिरीयारण्यक में कहा गया है -

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट।।[११]

धर्मशास्त्र में कहा गया है कि - गाय के गोबर में श्री लक्ष्मीजी का वास होता है जो कि पवित्रता और सर्वत्र माङ्गलिकता प्रदान करता है -

"गोमये वसते लक्ष्मीः पवित्रा सर्वमङ्गला।"

---

[८] अथर्ववेद –१३.१.४६
[९] तैत्तिरीयोपनिषद् – भृगुवल्ली, ९.१
[१०] अथर्ववेद – ३.१७.९
[११] तैत्तिरीयारण्यक – ६.१२.१

ऋग्वेदीय श्रीसूक्त, मन्त्र क्रमाङ्क नौ में '**गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्** .....' में लक्ष्मी के गोमय (गोबर) स्वरुप की पुष्टि की गई है।

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन।। [१२]

उत्तम खाद के रूप में गोबर तथा मधुर रस के रूप में दूध देने वाली स्वस्थ गायें इस उत्तम गोशाला में आकर निवास करें।

आधुनिक वैज्ञानिक भी वैदिक आर्यों की इस सनातन-अवधारणा को प्रामाणिक रूप से स्वीकार करते हैं कि गाय तथा गोवंश के गोबर में वे बहमूल्य तत्त्व सन्निहित हैं जो रोगोत्पादक- प्रदूषक-कृमि-कीटों के विनाश में परमोपयोगी हैं। गोमय-लेपन भारतीय-संस्कृति की पवित्रता का सूचक है। सम्प्रति कृषि-कार्य में उपयोग किया जाने वाला कृत्रिम-रासायनिक खाद धरती एवं पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहा है, भूमि की उपजाऊ शक्ति क्षीणप्राय हो रही है, धरती बंजर होती जा रही है। पानी की खपत अधिक मात्रा में सिंचाई के रूप में बढ़ती जा रही है। रासायनिक घटकों के प्रयोग से निर्मित, विषयुक्त होने से पानी के संसर्ग से तरल होकर पशु-पक्षियों आदि द्वारा पी लेने से लाखों जीवों का मरण प्रतिदिन होता है। गोवंश का गोबर इन सबका सरल-सहज पर्यावरणीय-संरक्षण का समाधान है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद में पृथिवी की रक्षा के लिए **'महद् उल्बम्'** इस वैदिक पद का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ 'ओजोन परत' के रूप में संसूचित होता है जिस प्रकार से गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए 'उल्ब' (जार-जेर-झिल्ली-परत) होती है। उसी प्रकार पृथ्वीरूपी शिशु को सर्वथा रक्षा के लिए परमात्मा ने इस महद् उल्ब (ओजोन परत) की रचना की है जो स्थविर-स्थूल रूप वाला है। इसका स्वरूप सुवर्ण के समान दिव्य आभामय है। सम्प्रति वैज्ञानिक इसके रहस्य, ज्ञान और संरक्षण में शोधरत हैं जबकि वैदिक, विवेकी ऋषियों ने अरबों वर्ष पूर्व अपनी तपः साधना के प्रभाव से इस तथ्य का अभिज्ञान कर लिया था -

महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीदयेनाविष्टितः प्रविवेशिथापः।
विश्वो अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः।। [१३]

आज मानव अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर वृक्षों, वनों आदि को तेजी से काट रहा है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में '**मापो मौषधीर्हिंसीः**[१४]' कहकर वृक्षों की हिंसा अथवा उनके काटने का निषेध किया गया है।

---

[१२] अथर्ववेद –३.१४.३
[१३] ऋग्वेद – १०.५१.१
[१४] यजुर्वेद – ६.२२

ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त में वन की देवी 'अरण्यानी' का वर्णन है, जहाँ उसे बहुत अन्नों वाली सबसे महान् तथा समस्त वन्य-जन्तुओं की माता कहा गया है।

अथर्ववेद में पीपल को **'देवानां सदनमसि'** कहकर उसमें देवों का वास बताया गया है। सम्भवतः यही कारण है कि लोक में पीपल की पूजा की जाती है। जंगल-जलेबी के वृक्ष में तेजाबी वर्षा से मुक्ति दिलाने की क्षमता है, क्योंकि यह वृक्ष वर्षा के मुख्य घटक सल्फर डाई ऑक्साइड की सान्द्रता को अस्सी प्रतिशत तक सोख लेता है। इसी प्रकार चीड़ का पेड़ मिट्टी से 'वैरीलिय' धातु को तथा सेम व मटर के पौधे भूमि से 'मालिब्डिनम' जैसी भारी धातुओं को प्रदूषण से भूमि को मुक्त करते हैं। इस प्रकार वन-सम्पदा से जहाँ हमें फलों, लकड़ियों तथा औषधियों की प्राप्ति होती है। वन पर्यावरण का भी सशक्त एवम् अपरिहार्य साधन है। वेदों में इसी दृष्टि से **'वनानां पतये नमः'** तथा **'नमो वृक्षेभ्यः'** इत्यादि कहकर उनके रक्षकों को आदर दिया गया है।

इस प्रकार वैदिक-सभ्यता में वनों का अत्यन्त महत्त्व है। मानव-जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्य है। उस अवस्था में अध्ययन करना आवश्यक है। अध्ययन के लिए ये ब्रह्मचर्याश्रम, गुरुकुल आदि जंगलों में ही होते थे। गृहस्थाश्रम में मानव को कृषि, जंगलों के कार्य, व्यवसाय, रक्षा आदि के लिए भी जंगलों का आश्रय लेना पड़ता है और उनमें जीवन व्यतीत करना पड़ता है। तृतीय आश्रम वानप्रस्थ स्वयम् अपने नाम से ही वन की आवश्यकता को प्रकट कर रहा है जिसमें साधना करने के लिए वनों का ही आश्रय लेना पड़ता है। चौथा आश्रम संन्यास भी ऐसा ही है कि इसमें जो गिरि, पर्वत, आरण्य आदि संन्यासी होते हैं वे भी वनों का ही आश्रय लेते हैं।

प्रकृति मानव की सतत सहचरी रही है। प्राणी जगत् के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी के चारों ओर वायु का सागर फैला रहता है। ऋग्वेद में वायु के गुण बताते हुए कहा गया है कि -

वात॒ आ वा॑तु भेष॒जं श॒म्भु म॑यो॒भु नो॑ हृ॒दे।
प्र॒ण आयूँ॑षि तारिषत्।।[१५]

अर्थात् शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है जो हमारे हृदय के लिए औषधि के समान उपयोगी है। वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ाता है।

ऋग्वेद में ही बताया गया है कि शुद्ध वायु कितनी अमूल्य है ? और वह जीवित प्राणियों के लिए औषधि का काम करती है -

दक्षं॑ ते भ॒द्रमाभा॑र्षं॒ परा॒ यक्ष्मं॑ सुवामि ते।
त्राय॑न्तामि॒ह दे॒वास्त्राय॑तां म॒रुतां॑ ग॒णः।।[१६]

---

[१५] ऋग्वेद- १०.१८६.१

शुद्ध ताजी वायु तपेदिक जैसे घातक रोगों के लिए अमोघ औषधि है। हे रोगी मनुष्य ! मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसाकर रक्षण में आया हूँ। तेरे लिए कल्याणपरक बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूँ और तेरे जीर्ण रोगों को दूर करता हूँ। पेड़-पौधे हमारे इस प्राण वायु को ऑक्सीजन प्रदान कर शुद्ध करते हैं तथा हमारी प्राण रक्षा करते हैं।

सहस्त्रों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों को यह ज्ञान था कि हवा कई प्रकार के गैसों का सम्मिश्रण है, जिनके अलग-अलग गुण एवम् अवगुण हैं। इनमें ही प्राणवायु (ऑक्सीजन) भी है जो जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है -

यदु॒दौ वा॑त ते गृ॒हेऽमृ॑तस्य नि॒धिर्हि॒तः।
ततो॑ नो देहि जी॒वसे॑।।[१७]

अर्थात् इस वायु के गृह में जो यह अमरत्व की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।

जल जीवित प्राणियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। कहा भी गया है कि जल ही जीवन है। जल के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जल को कई प्रकार के काम में लिया जाता है। ऋग्वेद में जल के लिए प्रार्थना की गई है।

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।
शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः।।[१८]

जल मानव-जीवन का अभिन्न अङ्ग है। जल जीवित प्राणियों के लिए औषधि के समान है। जल से ही प्राणी की आन्तरिक तथा बाह्य शुद्धि होती है।

जल मङ्गलमय और घृत के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुरता भरी जलधाराओं का स्रोत भी है। भोजन के पाचन में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला एवम् अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्त्व है। 'हे जल ! तुम अन्न की प्राप्ति के लिए उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवम् अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं, तुम औषधि रूप हो-

तस्मा॒ अर॑ं गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ।
आपो॑ ज॒नय॑था च नः।।[१९]

---

[१६] ऋग्वेद – १०.१३७.४
[१७] ऋग्वेद – १०.१८६.३
[१८] ऋग्वेद – १०.९.४
[१९] ऋग्वेद – १०.९.३

कृषि-कर्म में सन्नद्ध कृषक के लिए तो जल की सर्वस्व है। वैदिकसाहित्य के भूगोल वर्णन में नदियों का वर्णन होता है। अथर्ववेद के उन्नसीवें काण्ड के प्रथम सूक्त के प्रथम मन्त्र में प्रजापति ब्रह्मा स्वयं कहते हैं -

सं सं स्रवन्तु नद्यः सं वाताः सं पतत्रिणः।
यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येऽण हविषा जुहोमि।।[२०]

कल-कल निनाद करती हुई नदियाँ सम्यग्-रूप से प्रवाहित हों। शीतल मन्द-सुगन्ध वायु अनुकूलता के साथ प्रवाहमान हों। सभी पक्षीगण (उपलक्षण रूप से) अथवा प्राणी-समुदाय अनुकूल स्वभाव का आचरण करें। स्तुतिपूर्वक किए जा रहे इस यज्ञ को, यजमान को पुण्य, शान्ति, अनुष्ठानादि कर्म से पशु-पुत्रादि प्रदान करके समृद्ध करें।

आधुनिक समय में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप कल-कारखानों की सङ्ख्या में पर्याप्त वृद्धि, कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ कूडा करकट, रासायनिक अपशिष्ट आदि नदियों में मिलते रहते हैं। अधिकांश कल कारखाने नदियों-झीलों तथा तालाबों के निकट होते हैं, जनसङ्ख्या-वृद्धि के कारण मल-मूत्र नदियों में बहा दिया जाता है। गाँवों तथा नगरों का गन्दा पानी प्रायः एक बड़े नाले के रूप में नदियों-तालाबों और कुँओं में अन्दर ही अन्दर आ मिलता है। समुद्र में परमाणु विस्फोट से भी जल प्रदूषित होता है। वेदों में जल को शुद्ध रखने पर विस्तार से विचार किया गया है। मकान के पास ही शुद्ध जल से भरा हुआ जलाशय होना चाहिए ;-

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना।।[२१]

अर्थात् अच्छे प्रकार से रोगरहित तथा रोगनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मैं मृत्यु से बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घरों में आकर अच्छी तरह बैठता हूँ। इस प्रकार आज के सन्दर्भ में भी हम वैदिक ऋषियों की बातों को उद्धृत कर सकते हैं।

पुरुष सूक्त व उच्छिष्टब्रह्म सूत्रादि सूक्तों के अनुसार वैदिक ऋषियों ने प्राणी मात्र में परमात्मा की सत्ता मानते हुए प्राणी मात्र के प्रति आत्मभाव एवं पूज्यभाव रखा। मानव एवं प्रकृति के मध्य समुचित सन्तुलन एवं तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उनमें अन्तर्निहित दैवीसत्ता के प्रति वे आस्थावान् थे। अतएव उन्होंने वन्यजीवों को भी अनेक सूक्तों का देवता व ऋषि माना अथवा उनके नाम से अपना व देवताओं का नामकरण किया। वैदिक ऋषि पशु-पक्षियों की हिंसा करने अथवा उन्हें पीड़ा पहुँचाने की

---

[२०] अथर्ववेद- १९.१.१
[२१] अथर्ववेद – ३.१२.९

तो कल्पना भी नहीं कर पाते थे क्योंकि उन्हें वे देवतातुल्य मान उनकी स्तुति करते थे और उनसे स्वयं को पाप से मुक्त करने की प्रार्थना करते थे -

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः।।[२२]

वैदिक ऋषि इस तथ्य से परिचित थे कि यदि प्राकृतिक-सन्तुलन को बनाए रखना है तो पशु, अश्व और मनुष्य तीनों को परस्पर मिल जुलकर चलना पड़ेगा, जिससे धान्य की समृद्धि भी बढ़ेगी।

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पुरुषाः।
सं धान्यऽस्य य स्फातिः संस्राव्येऽण हविषा जुहोमि।।[२३]

ऋग्वेद में पर्वतों की रक्षा की प्रार्थना की गई है। उन पर लगे वृक्ष प्रकृति को शुद्ध करने वाले हैं, इसलिए उनसे सुरक्षा की प्रार्थना की गई है -

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्यः स्रामणे भुवन्।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥[२४]

सूर्य भी एक ऐसा प्राकृतिक कारक है जो मानव-जीवन का अभिन्न अङ्ग है। शरीर के असाध्य रोगों से मुक्ति दिलाने में सूर्य अपूर्व शक्ति रखता है। सूर्य प्राणिमात्र को सत्कर्म में प्रेरित करता है तथा पापों से बचाता है। सूर्य प्रकृति में प्रदूषण को भी दूर करता है-

उत सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन्।
आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्ट हा।।[२५]

मानव ने बाह्य प्रकृति पर तो विजय प्राप्त कर ली है परन्तु आन्तरिक प्रकृति को वश में नहीं कर सका, इसलिए विकृत स्वभाव के कारण बुद्धिमान् होता हुआ भी वह पाशविक कार्यों में लिप्त रहता है। वेद में मानव की अन्तःप्रकृति को सुधारने के लिए, उसके आत्मिक बल के लिए बहुत उदात्त आचार-शास्त्र का सङ्कलन है। वेद में विशुद्ध मानववाद का दिव्य सन्देश है जो आज के सन्दर्भ में मानव मात्र के लिए बहुत उपयोगी है। वेद मानव मात्र को अमृत-पुत्र घोषित करता है। उसका उद्घोष है कि सब मनुष्य भाई हैं, इनमें कोई जन्म से बड़ा नहीं है, कोई छोटा नहीं है - इस समानता के भाव को धारण करते हुए सब ऐश्वर्य या उन्नति के लिए मिलकर प्रयत्न करें -

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय[२६]

---

[२२] अथर्ववेद - ११.६.८
[२३] अथर्ववेद - २.२६.३
[२४] ऋग्वेद – ५.४६.६
[२५] अथर्ववेद – ६.५२.१
[२६] ऋग्वेद – ५.६०.५

मानव आन्तरिक-प्रकृति को यदि वश में करना चाहता है तो उससे तात्पर्य मन से है। यदि मन शुद्ध, पवित्र, सत्य से युक्त और वश में है तो दुःख की जगह सुख उत्पन्न होता है। प्रकृति का दोहन भी यही मन करता है। मन के दूषित भावों की तरङ्गों से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए सर्वप्रथम मानव को अपनी प्रकृति (स्वभाव) बदलना है। यजुर्वेद के चौतीसवें अध्याय के प्रारम्भिक छः मन्त्रों में मन को '**तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु**' अर्थात् मेरा मन शिव अर्थात् कल्याणकारी सङ्कल्प वाला हो, इस टेक के द्वारा परमात्मा से याचना की गई है।

जीते हुए व्यक्ति का मन भद्र चाहने वाला बने, इस तथ्य को मन्त्र में प्रकट किया गया है-

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युंजन्ति दक्षिणम्।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बृहत्रा जीवतो मनः।।[२७]

आज जब मनुष्य धर्म, जाति, ऊँच-नीच, देशकाल की सीमाओं में और अधिक बँटता जा रहा है तो वेदों का उपर्युक्त उद्घोष सर्वथा सार्थक है।

ऋग्वेद में कहा गया है कि मनुष्य को मनुष्य की सब ढंग से रक्षा और सहायता करनी चाहिए।

पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः।[२८]

वेद में उद्घोषपूर्वक कहा गया है कि मैं, मनुष्यों समेत सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें -

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।[२९]

अथर्ववेद में गौओं, जगत् के अन्य प्राणियों एवं मनुष्य मात्र के कल्याण की कामना की गयी है -

स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।[३०]

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है - प्रभु हमारे दोपाये और चौपाये पशुओं के लिए कल्याणकारी और सुखदायी हों - **शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।**[३१]

वेद में प्रार्थना है कि सर्वाग्रणी देव ! आप सबके नियन्ता हैं। मुझे दुश्चरित से पृथक् करो और सब ओर से सदाचार का भागी बनाओ। मैं अमर देवों का अनुकरण करूँ तथा दीर्घ आयुष्य, शोभन जीवन लेकर ऊपर उठ जाऊँ -

---

[२७] ऋग्वेद – १०.१६४.२
[२८] ऋग्वेद – ६.७५.१४
[२९] यजुर्वेद – ३६.१८
[३०] अथर्ववेद – १.३१.४
[३१] यजुर्वेद – ३६.८

परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।
उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतांऽअनु।।[३२]

वेदों में सौमनस्य-सूक्तों में गृहस्थ-जीवन के सम्बन्ध में जो उदात्त भाव प्रकट किए गए हैं, वे भी वैदिक धारा की महान् निधि हैं।

इनमें सभी जनों में समभाव, परस्पर सौहार्द की भावना व्यक्त की गयी है। यह अभिलाषा प्रकट की गई है कि परिवार के सभी सम्बन्धी प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर रहें, क्योंकि समाज का मूल परिवार ही है। सब एक दूसरे से मधुर वाणी में बोलें और सबके मन एक-समान हों। उनमें एक-दूसरे के प्रति पूर्ण सहानुभूति हो। यह सौमनस्य प्रत्येक काल में रहे जिससे समाज में कलह न हो और सब कार्य सुचारु रूप से चलते रहें, फलतः राष्ट्र उन्नति करे और समृद्धि की प्राप्ति हो[३३] । स्नेह और सौहार्द का यह सन्देश आज के स्वार्थपरक युग में और भी आवश्यक है।

मानव-जाति का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जैसे-जैसे समाज का विकास होता गया वैसे-वैसे मानव-जीवन और समाज संहिता के मूल्यों में परिवर्तन हुआ और इन सब परिवर्तनों के पीछे मानव की स्वतन्त्रता की भावना निहित रही। वेदों में द्वेष-त्याग के उद्धरण मिलते हैं। इसके साथ ही शत्रुरहित होने एवं स्वतन्त्रता प्राप्त करने के विषय में भी प्रार्थनाएँ हैं -

अनमित्रं नो अधराद् अनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चाद् अनमित्रं पुरस्कृधि।।[३४]
असपत्नं नो अधराद् असपत्नं न उत्तरात्।
इन्द्रासपत्नं नः पश्चाज्ज्योतिः शूर पुरस्कृधि।।[३५]

पञ्चभूतों एवं वनस्पतियों, पर्वतों इत्यादि के महत्त्व का मुक्तकण्ठ से गानकर वेदों ने प्रकृति से जुड़े इन घटकों का महत्त्व भली-भाँति समझा है और इन्हें संरक्षित करने के उपायों को भी बतलाया है। आज आवश्यकता है कि इसी भाव को जन-चेतना में विकसित किया जाये तो एक ऐसा समय आएगा कि प्रगतिवाद के इस युग में भौतिक एवम् औद्योगिक विकास के साथ ही मानव अधिक स्वस्थ रह सकेगा। वह प्रकृति के अधिक समीप रहकर मानसिक-रूप से भी अधिक सबल होगा। आज मानवमात्र के आत्यन्तिक दुःख का कारण उसके जीवन की कृत्रिमता है। प्रकृति की नैसर्गिक गोद में रहकर वह अपना जीवन सँवार सकता है।

---

[३२] यतुर्वेद – ४.२८
[३३] अथर्ववेद – ३.३०.१-७
[३४] अथर्ववेद – ६.४०.३
[३५] अथर्ववेद – ८.५.१७

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।[३६]

यदि हमारे शरीर के शिररूपी द्युलोक में 'द्यौ शान्तिः'- की भावना प्रबल हो जावे और हमारे हृदयरूपी अन्तरिक्ष में 'अन्तरिक्ष शान्तिः'- का वास हो जाये तो सर्वत्र द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, जल, वनस्पतियों में शान्ति ही शान्ति दृष्टिगोचर होगी। सब प्राणी शान्त एवं सुखी हो सकेंगे।

क्या शान्ति के इस मन्त्र से बढ़कर विश्व के पास और कोई उत्तम मन्त्र है ? मानव-जाति के लिए वेद मन्त्रों का एक-एक शब्द दैवी प्रेरणाओं का महान् कोश है। आज के मानव को जबकि प्रतिक्षण, अहर्निश दूसरों के आक्रमण का भय, दसों दिशाओं में से होता रहता है, ऐसे समय में वेद के उपर्युक्त आदर्श एवं प्रेरणाप्रद मन्त्र हमारे अन्दर उत्तम विचारों को जागृत कर हमें वास्तविक सुख और शान्ति प्रदान करते हैं।

डॉ. पूनम घई
एसोशिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
संस्कृत-विभाग
आर.एस.एम.(पी.जी.) कॉलेज, धामपुर(बिजनौर)

[३६] यजुर्वेद- ३६.१७